जोबनेर कृषि

फरवरी, 2026 | वर्ष : 11 | अंक : 2 | प्रति अंक मूल्य 25 रुपये | वार्षिक शुल्क : 250 रुपये

प्रसार शिक्षा निदेशालय

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
जोबनेर, जिला–जयपुर (राज.) 303 329

राजस्थान में सौंफ का प्रमाणित बीज उत्पादन

जोगेन्द्र सिहं1, सन्तोषदेवी सामोता2,राजेश3, फूलचन्द बैरवा4 एवं ओमप्रकाश मीणा5
1सहायक आचार्य, आनुवंशिक एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि महाविद्यालय, झिलाई, टोंक,राजस्थान
2सहायक आचार्य, प्रसार शिक्षा विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान
3सहायक आचार्य, शस्य विभाग, कृषि महाविद्यालय, झिलाई, टोंक, राजस्थान
4सहायक आचार्य, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि महाविद्यालय, झिलाई, टोंक,राजस्थान
5आचार्य, शस्य विभाग, कृषिम हाविद्यालय, झिलाई, टोंक,राजस्थान
श्रीकर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान

सारांश :–
भारत विश्व में सौंफ का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। हमारे देश में इसकी खेती मुख्यतः राजस्थान एवं गुजरात में रबी में बोई जाती है। सौंफ में पाये जाने वाले खुश्बुदार वाष्पशील तेल के कारण इसका अत्यन्त महत्व है। किसान सौंफ की वैज्ञानिक खेती से 20 से 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त करके लगभग 80 हजार से एक लाख रूपये प्रति हैक्टेयर तक का शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकता है।

भारत 127 हजार मैट्रिक टन उत्पादन के साथ विश्व में सौंफ का सबसे बड़ा उत्पादक (55 प्रतिशत) देश है। हमारे देश में सौंफ की खेती मुख्यतः राजस्थान एवं गुजरात राज्यों में रबी की फसल के रूप में की जाती है। राजस्थान में गत एक दशक में सौंफ का क्षेत्रफल एवं उत्पादन लगभग दुगुना हो गया है। राजस्थान में सौंफ का उत्पादन वर्ष 2013–14 में 14277 मैट्रिक टन था जो कि वर्ष 2022–23 में बढ़कर 29308 मैट्रिक टन हो गया है। सौंफ की उपयोगिता इसमें पाये जाने वाले खुश्बुदार वाष्पशील तेल के कारण है। रूचिकर गंध व स्वाद के कारण सौंफ के दाने साबुत या पीसकर सूप, अचार, चाकलेट, सॉस आदि कई भोज्य पदार्थों में उपयोग किये जाते हैं। सौंफ में पाचक व वायुनाशक गुण पाये जाते हैं।

जलवायु:–

सौंफ की खेती के लिए शुष्क एवं सामान्य ठण्डा मौसम उपयुक्त है (विशेषकर जनवरी से मार्च तक) जो कि सौंफ की उपज व गुणवत्ता के लिये लाभदायक रहताहै।

भूमि एवं खेत की तैयारी:–

सौंफ बीजोत्पादन के लिए जल निकास की सुविधा वाली दोमट या काली मिट्टी श्रेष्ठ रहती है। बलुई मिट्टी को छोड़कर प्रायः सभी प्रकार की भूमि में, जिसमें जीवांश पर्याप्त मात्रा में हो, सौंफ की खेती की जा सकती है। दो–तीन जुताई करके पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए और सिंचाई की सुविधानुसार क्यारियाँ बना लेनी चाहिए।

खेत का चुनाव एवं पृथक्करण दूरी:–

सौंफ के बीजोत्पादन के लिए ऐसे खेत का चुनाव करें जिसमें पिछले दो वर्षों से सौंफ की अन्य किस्म की खेती नहीं की गई हो। प्रमाणित व आधार बीज उत्पादन के लिए क्रमशः 100 व 200 मीटर की दूरी तक सौंफ की अन्य फसल नहीं बोई गई हों।

उन्नत किस्में:–

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर द्वारा विकसित सौंफ की उन्नत किस्में आर.एफ.–101, आर.एफ.–125, आर.एफ.–143, आर.एफ.–145, आर.एफ.–157, आर.एफ.–178, आर.एफ.–205, आर.एफ.–281,आर.एफ.–289, आर.एफ.–290 जो कि सम्पूर्ण राजस्थान में रबी बुवाई हेतु उपयुक्त है।

बीजस्रोत:–

बीजोत्पादन हेतु बीज को प्रमाणित स्रोतों यथा कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि अनुसंधान केन्द्रों, कृषि विज्ञान केन्द्रों, राष्ट्रीय बीज निगम व राज्य बीज निगम से ही क्रय करें तथा प्रमाणीकरण प्रक्रिया हेतु बीज का बिल, बैग व टैग/लेबल संभाल कर रखें। आधार बीज और प्रमाणित बीज तैयार करने के लिए बुवाई हेतु क्रमशः प्रजनक बीज और आधार बीज की आवश्यकता होती है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार:–

सौंफ की उन्नत किस्म के 10–12 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर के हिसाब से बुवाई करें। मृदा व बीज जनित फंफूद से बचाव के लिए 2. 5 ग्राम बाविस्टीन दवा अथवा 4 ग्रामट्राइकोडर्मा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करें।

बुवाई का समय एवं तरीका:–

सौंफ की बुवाई सीधे कतारों में मध्य सितम्बर से मध्य अक्टूबर तक करना उचित रहती है। कतार से कतार की दूरी 45–60 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी होनी चाहिए जबकि बीज को1.5 से 2 सेमी गहराई में बोना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक:–

गोबर की 15 टन खाद प्रति हैक्टेयर की दर से खेत की तैयारी से एक माह पहले भूमि में अच्छी तरह से मिला देवें। इसके अलावा 90 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 40 कि. ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिये। 30 कि.ग्रा. नत्रजन एवं फॉस्फोरस की पूरी मात्रा खेत की अन्तिम जुताई के साथ ऊरकर देवें। शेष नत्रजन में से आधी मात्रा 30 दिन बाद एवं आधी मात्रा फूल आने के समय सिंचाई के साथ देना चाहिए।

सिंचाई:–

सीधी बुवाई के तुरन्त बाद सिंचाई करें, जिससे बीज जम जाये। दूसरी हल्की सिंचाई बुवाई के 7–8 दिन बाद करनी चाहिए, जिससे बीजों का अंकुरण पूर्ण हो जावे। इसके बाद आवश्यकतानुसार 20–25 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिये। फूल आने के बाद एवं दाने बनते समय सिंचाई अवश्य करें।

निराई गुड़ाई एवं खरपतवार नियन्त्रण:–

पहली निराई–गुड़ाई बुवाई के 30 दिन बाद तथा दूसरी व तीसरी निराई–गुड़ाई आवश्यकतानुसार कर खरपतवार निकालते रहें। पेन्डामिथालीन 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर 750 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के एक–दो दिन बाद छिड़काव करके भी खरपतवार नियन्त्रण कर सकते हैं।

रोगिंग :–

बीजोत्पादन हेतु फसल में से अवांछनीय, अन्य फसल/किस्म, रोगग्रस्त व खरपतवार के पौधों को फूल आने से पूर्व ही निकाल देना चाहिए अन्यथा ये पौधे बीज की गुणवता को खराब कर सकते है। यह रोगिंग की प्रक्रिया फसलावधि में कम से कम 2–3 बार अवश्य करनी

चाहिए। अन्तिम निरीक्षण के समय, बीज फसल में अवांछनीय पौधे तय मानक यथा 0.10 प्रतिशत (आधार बीज) एवं 0.50 प्रतिशत (प्रमाणित बीज) से अधिक नहीं होने चाहिए अन्यथा बीज फसल को अमानक घोषित कर दिया जाता है।

प्रमुख कीट, रोग एवं रोकथामः–

- **मोयला, पर्णजीवी (थ्रिप्स) एवं मकड़ी :–** इसके नियन्त्रण हेतु डाईमिथोएट 30 ई. सी. 500 मि.ली. या मैलाथियान 50 ई. सी. 500 मि. ली. या क्यूनालफॉस 25 ई. सी. एक लीटर का प्रति हैक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार छिड़काव 15 से 20 दिन बाद दोहरायें।
- **झुलसा (रूमुलेरिया ब्लाईट/आल्टरनेरिया ब्लाईट) :–**इस रोग के नियन्त्रण हेतु बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत या मेन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या ताम्रयुक्त कवकनाशी 0.3 प्रतिशत का घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर दोहरावें।
- **छाछ्या (पाउडरी मिल्ड्यू) :–**इस रोग के नियन्त्रण हेतु 20 से 25 किलोग्राम गंधक के चूर्ण का भुरकाव प्रति हैक्टेयर दर से करना चाहिए या कैराथियान एल.सी. 1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कना चाहिए। आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव दोहरावें।
- **गोंदिया (गमोसिस):–**रोग ग्रस्त खेतों में सिंचाई एवं खाद देना बंद कर देना चाहिए। डाइमिथोएट 0.03 प्रतिशत या फॉस्फोमिडान 0.05 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

कटाई, गहाई एवं भण्डारणः–

सौंफ की फसल लगभग 150–170 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। सौंफ के सभी छत्रक एक साथ नहीं पकते, इसलिए जब दाना पूर्ण विकसित एवं हरापन लिये हो उन छत्रकों की तुड़ाई कर छायादार एवं हवादार स्थान पर सुखा देवें। इस प्रकार 7 दिन के अन्तराल पर 3 से 4 बार छत्रकों की तुड़ाई करें। जब छत्रक सूख जावें अर्थात् दानों में नमी 15 प्रतिशत से कम हो तब गहाई करें। जबकि भण्डारण करते समय ध्यान रखें कि दानों में नमी 10 प्रतिशत से अधिक न हो।

प्रमाणीकरण हेतु बीज के मानक

कारक	आधार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	97 प्रतिशत	97 प्रतिशत
निष्क्रिय पदार्थ (अधिकतम)	3 प्रतिशत	3 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	10/किलोग्राम	20/किलोग्राम
खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	10 /किलोग्राम	20 /किलोग्राम
आपत्तिजनक खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	5/किलोग्राम	10/किलोग्राम
अंकुरण (न्यूनतम)	65 प्रतिशत	65 प्रतिशत
नमी की मात्रा (अधिकतम)	10 प्रतिशत	10 प्रतिशत

उपज एवं आर्थिक लाभः–

सौंफ की वैज्ञानिक विधि से खेती की जावे तो पूर्ण विकसित एवं हरे दाने वाली सौंफ की 20 से 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है। सौंफ की खेती में लगभग 30 से 40 हजार रूपये प्रति हैक्टेयर का खर्च आता है। सौंफ का40–50 रूपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से लगभग 80 हजार से एक लाख रूपये तक का प्रति हैक्टेयर का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अनार के प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन

मधु बाई मीना1, सागर सैनी2 एवं महेन्द्र मीना3
1 महाराणा प्रताप कृषि प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर
2राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर)
3श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

अनार (प्यूनिका ग्रैनैटमएल.) पुनिकैसी परिवार से संबंधित है, यह कई संस्कृतियों और धर्मों के लेखन और कलातियों में पाए जाने वाले सबसे पुराने ज्ञात फलों में से एक है। ग्रीक और फारसी पौराणिक कथाओं में इसे स्वास्थ्य, सौंदर्य और शाश्वत जीवन का प्रतीक माना गया है। प्राचीन यूनानियों ने अनार को उर्वरता का प्रतीक माना और इसे देवीडेमेटर, पर्सेफोन, एफ्रोडाइट और एथेना से जोड़ा गया है। दुनिया के उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अनार को ज्यादातर टेबल फल के रूप में पसंद किया जाता है। यह फारस (ईरान) का मूल फल है और बड़े पैमाने पर इसकी खेती स्पेन, मोरक्को, मिस्र, ईरान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान जैसे भूमध्य सागरीय देशों में की जाती है। भारत सरकार (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय) के अनुसार, वर्ष 2023–24 में अनार की खेती 256.69 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में, 11.92 मीट्रिकटन/हैक्टेयर की उत्पादकता के साथ 3059.45 हजार मीट्रिक टन का उत्पादन हुआ है। राजस्थान में 17.17 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में 160.84 मीट्रिक टन/हैक्टेयर उत्पादन के साथ 9.37 मीट्रिक टन/हैक्टेयर उत्पादकता पायी गयी है। वर्तमान में रेगिस्तानी जिलों में जैसे बाड़मेर में अनार का अधिक उत्पादन हो रहा है। अनार एक ऐसा फल है जो प्राचीन काल से ही अपने लाभकारी गुणों के लिए जाना जाता है, इसलिए इसकी मांग बढ़ती जा रही है।

अनार का पोषण एवं औषधीय महत्व–जंगली अनार के रस में साइट्रिक एसिड और सोडियम साइट्रेट होता है जिसका उपयोग औषधीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है। अनार के रस का उपयोग अपच के इलाज के लिए किया जाता है और इसे कुष्ठ रोग में भी फायदेमंद माना जाता है। तने और जड़ की छाल में आइसोपेलेटि एरिन सहित कई एल्कलॉइड होते हैं जो टेप वर्म के खिलाफ सक्रिय होते हैं। अधिक खुराक से उल्टी और रेचक रोग हो सकता है, पुतली का फैलाव, दृष्टि का धुंधलापन, मांस पेशियों में कमजोरी और पक्षाघात हो सकता है। सूखे, चूर्णितफूलों की कलियों का उपयोग ब्रोंकाइटिस के उपचार के रूप में किया जाता है। इसे दिव्य फल के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह शास्त्र ग्रंथों में सबसे अधिक वर्णित फल है। अनार में एंटी–ऑक्सीडेंट, एंटी–वायरल और एंटी–ट्यूमर गुण होते हैं और इसे विटामिन, विशेष रूप से विटामिन ए, विटामिन सी और विटामिन ई, साथ ही फोलिक एसिड का अच्छा स्रोत माना जाता है। रोजाना अनार का सेवन करने या जूस पीने से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, टाइप–2 डायबिटीज से लड़ता है, रक्तचाप नियंत्रण में रहता है, पाचन सुचारू होता है और त्वचा स्वस्थ बनती है, और इस प्रकार हमारे शरीर की रक्षा करता है।

अनार की खेती में रोग प्रबंधन का आर्थिक महत्व बहुआयामी है, जिसमें राज स्वसृजन और निर्यात क्षमता से लेकर खाद्य सुरक्षा, रोजगार, निवेश आकर्षण और पर्यावरणीय स्थिरता शामिल है। अनार का उत्पादन कई समस्याओं से जुड़ा है जैसे अंतर्निहित बाधाएं लंबे समय तक सूखा

रहना, उपयुक्त किस्मों की अनुपलब्धता, पर्यावरण विविधताएं, पोषक तत्वों की कमी, शारीरिक विकार, कटाई के बाद बहुतायत, कटाई के बाद नुकसान, अनुचित भंडारण और विपणन सुविधाओं की कमी, और जैविक बाधाएं कीट और रोग सम्बन्धी चुनौतियाँ हैं। किसान प्रभावी रोग प्रबंधन रणनीतियों को लागू करके रोग के प्रभाव को कम कर सकते हैं, और अनार की खेती की दीर्घकालिक व्यवहार्यता और लाभप्रदता के साथ उत्पादकता, गुणवत्ता सुनिश्चित कर सकते हैं।

अनार के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन पद्धतियाँ

प्रमुख बीमारियाँ उकठा, श्यामवर्णरोग व बैक्टीरियल ब्लाइट हैं जिसके परिणामस्वरूप अनार के फल की उपज में कमी आती है और उत्पादकों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अनार कई बीमारियों के प्रति संवेदनशील होता है जो फल की गुणवत्ता और उपज को प्रभावित करता है। अनार में विभिन्न रोगों के लिए जिम्मेदार प्रमुख फफूंद रोगजनक सर्कोस्पोराप्यूनिका, कोलेटोट्राइकमग्लियो स्पोरियोइड्स, अल्टरनेरिया अल्टर्नाटा, सेराटोसिस्टि सफिम्ब्रिएटा और जीवाणु रोगजनक जैंथोमोनस एक्सोनोपोडिस पी.वी. प्यूनिका हैं।

1. सर्कोस्पोरापत्ती/फलों के धब्बे (सर्कोस्पोरा प्यूनिकी):

लक्षण :

रोगजनक पत्तियों और फलों पर हल्के भूरे रंग के गोलाकार/जोनट धब्बे उत्पन्न करता है। जबकि टहनियों पर काले एवं अण्डाकार धब्बे बन जाते हैं। टहनियों में प्रभावित क्षेत्र चपटा हो जाता है और किनारे उभरे हुए दब जाते हैं, ऐसी संक्रमित टहनियाँ धीरे–धीरे सूख जाती हैं और गंभीर संक्रमण होने पर पूरा पौधा मर सकता है।

उपचार :

- ❖ रोगग्रस्त फलों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए। रोगग्रस्त टहनियों की छँटाई एवं 10 प्रतिशत लहसुन और प्याज के बल्ब का अर्क रोग को नियंत्रित करने में प्रभावी है।
- ❖ फसल पर हेक्साकोनाजोल 5 ईसी या प्रोपिकोनाजोल 25 ई सी/1 मिली/लीटर का छिड़काव करें। थियोफैनेट मिथाइल/1 ग्राम/लीटर सबसे प्रभावी है।

2. एन्थ्रेक्नोज (कोलेटोट्राइकम ग्लियोस्पोरियोइड्स):

लक्षण :

यह रोग पत्तियों पर पीले किनारों से घिरे छोटे, अनिश्चित फीके बैंगनी याकाले धब्बों के रूप में दिखाई देता है। संक्रमित पत्तियां पीली होकर गिर जाती हैं।

उपचार :

- ❖ टॉप्सिन–एम (0.1 प्रतिशत), सल्फेक्स (0.03 प्रतिशत), डाइफोलेटन (0.2 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से रोग पर अच्छा नियंत्रण होता है।
- ❖ 20 दिनों के अंतराल पर प्रणालीगत कवकनाशी जैसे हेक्साकोनाजोल / 1 मिली/लीटर/थियोफैनेटमिथाइल / 1 ग्राम/लीटर का छिड़काव करके रोग को नियंत्रित किया जाता है।
- ❖ संपर्क फफूंदनाशकों में क्लोरोथालोनिल (2 ग्राम/लीटर) और उसके बाद मैन्कोजेब (2 ग्राम/लीटर) एन्थ्रेक्नोजरोग के खिलाफ अधिक प्रभावकारी थे।

3. विल्ट (सेराटोसिस्टिस फिम्ब्रिएटा):

लक्षण :

पौधे की सभी पत्तियाँ पीली/हल्के हरे रंग की हो जाती हैं, एक ही शाखा में पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, पौधा पूरी तरह मुरझा जाता है और तने में भूरे रंग के साथ पिन छेद हो जाते हैं। रोगग्रस्त पौधों की जड़ें अनिश्चित आकार के घावों के साथ भूरे से कालेरंग की दिखाई देती हैं। पौधे की शाखाओं की पत्तियों के गिरने से पूरी तरह मुरझाने का पता चलने में कुछ दिन से लेकर 2–3 महीने तक का समय लग सकता है। कुछ पौधों में पौधे की सभी पत्तियाँ अचानक गिर जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप लक्षण शुरू होने के एक या दो दिनों के भीतर पूरी पत्तियां मुरझा जाती हैं।

उपचार :

- ❖ पानी जमा न होने दें, जल निकासी की सुविधा का प्रबंध करें।
- ❖ इस बीमारी को नियंत्रित करने के लिए प्रति एकड़ मिट्टी में ट्राइकोडर्मा विराइड 2 किलोग्राम. 20 किलोग्राम अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद या वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग भी प्रभावी है।
- ❖ प्रारंभिक अवस्था में 2 मिलीलीटर प्रोपीकोनाजोल . 4 मिलीलीटर क्लोरोपाइरीफॉस प्रति लीटर पानी के घोल से, प्रति पेड़ 8–10 लीटर घोल से छिड़कें।
- ❖ यदि कोई पौधा पहले से ही मुरझा गया है तो ऊपर बताए अनुसार रसायन छिड़कें, फिर पूरे पौधे को जड़ों सहित हटा दें और जला दें।
- ❖ 25 मिली/लीटर की दर से फॉर्मेल्डिहाइड का उपयोग करें।

4. बैक्टीरियल ब्लाइट(जैंथोमोनस एक्सोनोपोडिस पी.वी. प्यूनिका):

लक्षण : पत्तियों पर छोटे अनियमित, पानी से लथपथ धब्बे दिखाई देते हैं। पिन के नेक्रोटिक केंद्र–सिर के आकार के साथ धब्बे व्यास में 2 से 5 मिमी तक होते हैं। धब्बे पारभासी होते हैं, बाद में हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं और पानी से लथपथ प्रमुख किनारों से घिरे होते हैं। धब्बे मिलकर बड़े पैच बनाते हैं। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियाँ झड़ जाती हैं। यह जीवाणु तने, शाखाओं तथा फलों पर भी आक्रमण करता है। तने पर रोग गांठों के आसपास भूरे से काले धब्बों के रूप में शुरू होता है। इससे गांठें सिकुड़ जाती हैं और टूट जाती हैं। अंततः शाखाएँ टूट जाती हैं। पेरीकार्प पर एल, वी और वाई आकार की दरारों के साथ भूरे से काले धब्बे दिखाई देते हैं। फल पर धब्बे उभरे हुए और तैलीय दिखते हैं।

उपचार :

- ❖ हर 3 महीने में 25 किलोग्राम/1000 लीटर की दर से ब्लीचिंग पाउडर(ए.आई. 33: सीएल) का उपयोग करें।
- ❖ सोडियम हाइपोक्लोराइट (2.5प्रतिशत) से प्रूनिंग उपकरणों जैसे सेकेटर्स, प्रूनिंग नाइफ आदि को कीटाणु रहित करें।
- ❖ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (5 ग्राम/10 लीटर पानी) . 2 ब्रोमो, 2 नाइट्रोप्रोपने, 1,3 डायोल (ब्रोनोपोल/बैक्टीरिनशाक/ब्लैक आउट) (5 ग्राम/10 लीटर पानी) . कॉपर हाइड्रॉक्साइड (कोसाइड) (20 ग्राम/10 लीटर) का छिड़काव करें।
- ❖ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (5 ग्राम/10 लीटर पानी) . 2 ब्रोमो, 2 नाइट्रोप्रोपेने, 1, 3 डायोल (5 ग्राम/10 लीटर पानी) . कार्बेन्डाजिम (10 ग्राम/10 लीटर पानी). स्प्रेडरधस्टिकर (5 मिली/10 लीटर पानी)।
- ❖ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (5 ग्राम/10 लीटर पानी) . 2 ब्रोमो, 2 नाइट्रोप्रोपेने, 1,3 डायोल (5 ग्राम/10 लीटर पानी). कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (20 ग्राम/10 लीटर पानी). स्प्रेडर/स्टीकर (5 मिली/10 लीटर पानी)।

❖ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (5 ग्राम/10 लीटर पानी) 2 ब्रोमो, 2 नाइट्रोप्रोपेने, 1,3 डायोल (5 ग्राम/10 लीटर पानी), मैंकोजेब (20 ग्राम/10 लीटरपानी)/स्प्रेडर/स्टिकर (5 मिली/10 लीटर पानी)।

5. अल्टरनेरिया फल के धब्बे : (अल्टरनेरिया अल्टरनेटा)

लक्षण :

फलों पर छोटे लाल भूरे गोलाकार धब्बे दिखाई देते हैं। जैसे–जैसे रोग बढ़ता है ये धब्बे आपस में जुड़कर बड़े धब्बे बना लेते हैं और फल सड़ने लगते हैं। फल प्रभावित होते हैं जो पीले पड़ जाते हैं और खाने के लिए अयोग्य हो जाते हैं।

उपचार :

❖ सभी प्रभावित फलों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।

❖ मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) या कैप्टाफ (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करने से रोग पर प्रभावी नियंत्रण होता है।

चने के प्रमुख रोग, कीट एवं उनका प्रबन्धन

तरूण कुमार जाटवा, लाला राम बलाई, जितेन्द्र कुमार गुप्ता एवं रमेश चन्द आसीवाल

सहायक प्रोफेसर, कृषि महाविद्यालय, लालसोट (दौसा)

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

पचिरय :

चना (*Cicer arietinum* L.) एक स्वपरागण वाली द्विगुणित (2n=2x=16) शीत ऋतु की फलीदार फसल है। जो विश्व में खाद्यान फलियों में आम फलियों के बाद दूसरे स्थान पर है। यह विश्व के उपोषण कटिबंधीय और समशीतोषण क्षेत्रों के 50 से अधिक देशों में , मुख्यतः भारतीय उपमहाद्वीप, पश्चिम एशिया, उत्तरी अफ्रीका, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में विभिन्न प्रकार के वातावरणें में उगाया जाता है। बीज के आकार, आकृति और रंग के आधार पर, खेती में उगाए जाने वाले चने के दो अलग–अलग प्रकार के ज्ञात है। अर्थात देसी प्रकार जिसमें अधिकांशतः गुलाबी फूल, कोणीय, भूरे, छोटे बीज होते है। जिनमें रेशे का प्रतिशत अधिक होता है। जो मुख्य रूप से दक्षिण एशिया और अफ्रीका में उगाया जाता है। एक तीसरा प्रकार, जिसमें मध्यवर्तीया मटर के आकार का कहा जाता है। मध्यम से छोटे आकार और गोल, मटर के आकार के बीजों से पहचाना जाता है। काबुली किस्म लगभग दो तिहाई चना उत्पादक देशों में उगाई जाती है। लेकिन देशी किस्म चना उत्पादन में प्रमुख है और लगभग 85 प्रतिशत उत्पादन करती है, जबकि काबुली किस्म विश्व चना उत्पादन का लगभग 15 प्रतिशत उत्पादन करती है।

पोषण की दृष्टि से दलहनों को गरीबो का मांस (Poor man's meat) कहा जाता है। क्योंकि इसमें धान्य की तुलना में लगभग 21.1 प्रतिशत प्रोटीन, 4.5 प्रतिशत वसा एवं 61.35 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट पायी जाती है। इसके साथ–साथ दलहनों में पाई जाने वाली प्रोटीन के अमीनो–अम्ल के संगठन में यह विशेषता होती है कि यदि दलहन को धान्य के साथ मिलाकर भोजन में लिया जाये तो भोजन का जैविक महत्व बढ़ जाता है।

चना को दालों का राजा (the king of pulses) कहा जाता है। इसका आटा चपाती, कढ़ी (बेसन), नमकीन, मिठाईयां तथा अन्य खाद्य–पदार्थों में प्रयोग होता है। इसके पौधे की हरी पत्तियां मेलिक अम्ल ;उंसपब बपकद्ध, ऑक्जेलिक अम्ल (oxalic acid) आदि के कारण नमकीन लगती है, अतः चने के पौधों का सूखा चारा पशुओं को खाने में स्वादिष्ट लगता है।

चने का उत्पत्ति स्थान : origin of chickpea

चने के जन्म स्थल के बारे में वैज्ञानिक को भिन्न–भिन्न मत हैं। डी–कण्डोल के अनुसार चने का जन्म स्थान भारत ही है। कुछ वैज्ञानिक अफगानिस्तन, दक्षिण पश्चिमी एशिया को चने का जन्म स्थान मानते हैं।

क्षेत्रफल एवं वितरण (Area and Distibution)

संसार में इस फसल का क्षेत्रफल लगभग 10.54 मिलियन हैक्टेयर है तथा लगभग 31 देशों में , मुख्य रूप से एशियाई देश अफ्रीका, यूरोप आदि में यह पैदा किया जाता है। भारत में लगभग 73 मिलियन हैक्टैयर भूमि में 48 मिलियन टन चने का वार्षिक उत्पादन है। चने की खेती के लिए आवश्यक जलवायु चने की खेती के लिए 85 से 95 सेंटीमीटर वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त होते हैं। चने की फसल में पाला अधिक हानि पहुंचाता है। चने के अंकुरण के समय 15–25°C तापक्रम, पौधा बढ़ने के लिए साधारण ठंाम तथा पत्ते समय उच्च तापक्रम 25–30°C की आवश्यकता होती है।

चने की उन्नतशील किस्में (improved carities of gram)

❖ पंतजी–114, राधे, पूसा–256, सदाबहार–13, पूसा–207, पूसा–408, गौरव–बीजी–203, जीडी–1168, विश्वास–टी–3।

❖ काबुली चने की किस्में एल–560, एल–114, सी–104

❖ राजस्थान में मुख्य चने की विकसित किस्मों में आरएसजी–974, आरएसजी–902 (अरूणा), आरएसजी–896 (अर्पणा), आरएसजी–807 (आभा), जीएनजी–421, प्रताप चना–1 एवं काबुली चने की किस्में एल–550, केएके–2

चना उत्पादन रोगों और कीटों के कारण बाधित हैं सामान्य5, मृदा जनित रोग (फ्यूजेरियमविल्ट, कॉलररॉट, शुष्क जड़ सड़न आदि) मध्य और प्रायद्वीपीय भारत में अधिक प्रचलित हैं, जबकि पर्णरोग (एस्कोकाइटाब्लाइअ, बोट्रसइटिस ग्रेमोल्ड, आदि) उत्तरी उत्तर–पचिश्मी और पूर्वी भारत में प्रमुख हैं। कीटों में फली छेदक पूरे भारत में उपज को सबसे अधिक कम करता है, जबकि ब्रकिड भण्डारण में गंभीर क्षति पहुंचाता है। चने की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले प्रमुख रोग उखेड़ा, रूतुआ, एस्कोकाइटाब्लाईट, तना गलन, सुखा जड़ गलन, आद्र गलन, ग्रमोल्ड, अल्टरनेरिया ब्लाईट, एन्थ्रक्नोज, स्टेमफाइलियम पत्ता धब्बा रोग, फोमा पत्ता ब्लाईट व सटंट रोग हैं। इन रोगों और कीटों के नैदानिक लक्षण और उनके नियंत्रण के उपाय इस प्रकार :

1. फ्यूजेरियम विल्ट : उकठा रोग

फ्यूजेरिय विल्ट नामक रोग को उकठा रोग के नाम से जाना जाता है। चने की फसल को इस रोग से बहुत नुकसान होता है। बहुत तेजी से फैलने वाले इस रोग के कारण फसल की पैदावार में भारी कमी देखी जा सकती है। इस रोग की सूचना सब से पहले भारत में बटरल ने 1918 में दी थी, फ्यूजेरियम विल्ट महामारी व्यक्तिगत फसलों के लिए विनाशकारी हो सकती है और अनुकूल परिस्थितियों में 100 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचा सकती है।

कारण जीव

चने का फ्यूजेरियम विल्ट फ्यूजेरियम आफक्सीस्पोरम एफ. प्रजाति सिसेरिस के कारण होता है।

लक्षण

रोग के लक्षण पौधे के विकास के किसी भी चरण में विकसित हो सकते हैं और प्रभावित पौधे पैच में समूहित हो सकते हैं या पूरे क्षेत्र में फैले हुए दिखाई दे सकते हैं खेत में बुवाई के 25 दिनों के भीतर संवदेनशील जीनो टाइप में विल्ट देखा जा सकता है। (जिसे ''प्रारंभिक विल्ट'' कहा जाता है) हालांकि, लक्षण आमतौर पर फूल आने के शुरूआती चरणों में बुवाई के 6 से 8 सप्ताह बाद अधिक दिखाई देते हैं। और फली बनने की अवस्था (देरसेविल्ट) तक भी दिखाई दे सकते हैं। पत्तियों का मुरझाना रोग के शुरूआती चरणों में पौधे की निचली पत्तियां पीली पड़ कर मुरझाना शुरू कर देती है। जैसे–जैसे रोग बढ़ता है, यह मुरझाना पौधे के ऊपर की और फैलता है और अंततः पूरा पौधा सूख जाता पौधे के तने में सड़ने के लक्षण दिखाई देते हैं, जिससे पौधा कमजोर हो जाता है। जड़े काली पड़कर सड़ने लगती है।

फंगस (कवक) जड़ों के माध्यम से पौधे के संवहनी तंत्र में प्रवेश करता है, जिससे पानी और पोषक तत्वों का प्रवाह बाधित होता है, तनों को फाड़कर देखने पर अंदर काले, कत्थई या लाला रंग के धागों जैसे कवक दिखाई देते हैं। पहले आधार पर और फिरतनों में ऊपर की ओर कत्थई से लाल रंग में बदरंग हो जाते है।

प्रबन्धन:

- ❖ बीजों को कार्बेन्डाजिम या थाइरम 2 ग्राम/किग्रा. की दर से उपचारित करें या ट्राइकोडर्मा विरिडे 4 ग्राम/किग्रा. प्यूडो नोमास फ्लोरेसेंस 10 ग्राम/किग्रा की दर से उपचारित करें।
- ❖ जैविक खाद या हरी खाद की भारी मात्रा में डालें।
- ❖ गैर–पोषी फसलों के साथ–6 वर्षीय फसल चक्र अपनाएं।
- ❖ तीन से चार वर्षों तक उन स्थानों पर चना उत्पादन से बचना चाहिए। जहां चना विल्ट रोग प्रचलित है।
- ❖ यदि संभव हो तो चने की बुवाई अक्टूबर से तीसरे सप्ताह से पहले नहीं की जानी चाहिए।

चने को हल्की मिट्टी में लगभग 8 से 10 सेमी. गहराई पर बोने से चना विल्ट रोग का प्रकोप कम हो जाता है।

राजस्थान में चने की *Fusarium wilt* (उकठा रोग) के प्रतिरोधी किस्मों में मुख्य रूप से जेजी–11, विक्की, आरएसजी–888 और राधिका कुछ उल्लेखनीय उदाहरणों में जीएनजी–2144 (टी), कोटा काबुली चना–2, आरकेजीके 13–499 और फुले विक्रांत, आइपीसी–2006–77, पूसा 3022 शामिल हैं। ये किस्में अलग–अलग स्तर की प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती हैं और क्षेत्र की विभिन्न बढ़ती परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हैं।

2. एस्कोकाइटाब्लाइटया एस्कोकाइटा झुलसा रोग:

चना फसल में एस्कोकाइटा बलइट एक महत्वपूर्ण और गंभीर रोग है और चने की उपज और गुणवत्ता को काफी नुकसान पहुंचा सकता है। एस्कोकाइटा ब्लाइट के कारण चना उत्पादन में 100 प्रतिशत तक की उपज हानि हो सकती है। यह विशेष रूप से उन किस्मों में गंभीर हो सकता है जो रोग के प्रति संवेदनशील हैं।

कारण जीव:

चने का एस्कोकाइटा ब्लाइट रोग फ़ूंद जनित रोगजनक एस्कोकाइटा रेगीई (जिसे पहले फोमारेबीई के नाम से जाना जाता था) के कारण होता है।

लक्षण:

- ❖ यह रोग आमतौर पर सर्दियों के अंत में पहली बार देखा जाता है। जग पूरे मैदान में झुलसे हुए पौधों के छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देते हैं।
- ❖ ये धब्बे ठंडी और नम परिस्थितियों में तेजी से बढ़ते हैं। पत्तियों पर मौजूद अन्य धब्बों के साथ जुड़ जाते हैं और पत्तियों और कलियों को झुलसा देते हैं। प्रभावित क्षेत्रों में 1 मिमी. से भी कम व्यास वाले छोटे धब्बे (पिक्निडिया) देखे जा सकते हैं।
- ❖ जैसे–जैसे रोग बढ़ता है–तने परलम्बे घाव बन जाते हैं, जिससे तने में घेरा बन जाता है और तना मर कर टूट जाता है।
- ❖ फफूंद फली में प्रवेश कर सकता है और बीज को संक्रमित कर सकता है। फली के गंभीर संक्रमण से आमतौर पर बीज कम बनते हैं और बीज संक्रमित हो जाते हैं। जग संक्रमित बीज बोए जाते हैं, तो उभरते हुए पौधों के तने के आधार पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। प्रभावित पौधे गिर कर मर सकते हैं।

चना एस्कोकाइटा ब्लाइट के नियंत्रण के तरीके:

- ❖ मिट्टी या फसल अवशेषों पर बीजाणुओं की जीवन क्षमता समापत करने के लिए फसलों को चक्रित करें।
- ❖ फबाबीन्स में दो साल के अंतराल के बाद ओर चना, मसूर और मटर में फसलों में तीन साल के अन्तराल के बाद खेतों में दालें वाली फसलें बोएं।
- ❖ दूषित कचरे के अवशेषों को हटा दें या दफना दें तथा वायु रखण के जोखिम को कम करने का ध्यान रखें।
- ❖ स्वच्छ बीज बोएं।
- ❖ वैकल्पिक होस्ट नियंत्रित करें।
- ❖ बुवाई से पहले थिरम या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) जैसे कवकनाशी 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की मात्रा में डालें।
- ❖ अपनी फसलोंको तीन वर्षों तक चक्रित करें।
- ❖ सहनशील या प्रतिरोधी किस्में जैसे जी–543, पूसा–256, गौरव, जीएनजी–146 और पीबीजी–1 आदि लगाएं।

3. शुष्क जड़ सड़न रोग:

उच्च तापमान वाले सूखे की स्थिति और मिट्टी में नमी की मात्रा शुष्क जड़ सड़न (डीआरआर) के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। यह एक ऐसा रोग है जो चने की जड़ों को नुकसान पहुँचाता है या तने को घेर लेता है।

लक्षण

शुष्क जड़ सड़न रोग के कारण पौधों की शक्ति में पत्तियों का रंग फीका हरा, लई वृद्धि में कमी और टहनियां सड़ जाती है। यदि जड़ों को व्यापक क्षति पहुँचती है, तो पत्तियां अचानक मुरझा कर पेड़ पर ही सूख जाती है। बढ़ते वैश्विक ओसत तापमान के कारण पौधों में रोग पैदा करने वाले कई नए रोगाणुओं का उद्भव हो रहा है, जिसकी दर अब तक अभूतपूर्व रही है। इनमें से एक है मैक्रोफोमिना सियोलिना, जो एक मृदा जनित तने क्रोट्रॉफिक है और चने में जड़ सड़न का कारण बनता है। वर्तमान में भारत के मध्य ओर दक्षिणी राज्यों को चने के डीआरआर हॉट स्पॉट के रूप में पहचाना गया है, जहाँकुल मिलाकर 5 से 35 प्रतिशत रोग का प्रकोप है। रोग कि 30 से 35 डिग्री के बीच का उच्च तापमान, सूखे की स्थिति तथा 60 प्रतिशत से कम मिट्टी की नमी, (शुष्क जड़ सड़न) डीआरआर केलिए अनुकूल परिस्थितियां हैं।

कारण जीव

चने की फसल में सूखी जड़ गलन रोग का मुख्य कारक मैक्रोफोमिना फेजोलिना नामक कवक है।

चना एस्कोकाइटा ब्लाइट के नियंत्रण के तरीके:

- ❖ ट्राइकोडर्मा विरिडे 4 ग्राम/किग्रा बीज या थाइरम 2 ग्राम + कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम–3 ग्राम प्रति किग्रा बीज या कार्बेन्डाजिम ग्राम/किग्रा बीज की दर से बीज उपचार करें।
- ❖ फसल चक्र अपनाए।

समय पर बुवाई करें ताकि फूल आने के बाद सूखे और गर्मी के तनाव से बचा जा सके। जो रोग को बढ़ा देते हैं।

4. कालर रॉट या तना सड़न रोग:

तना सड़न रोग एक महत्वपूर्ण रोग है जहां पौधे उच्च तापमान और मिट्टी में उच्च नमी के सम्पर्क में आते हैं, प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं, जिन्हें आसानी से उखाड़ा जा सकता है। स्क्लेरोशियम रोल्सपी एक महत्वपूर्ण मृदा जनित और तेजी से फैलने वाला कवक रोगाणु है, जो पौधे को काफी नुकसान पहुंचाता है। तना सड़न रोग के कारण चने में पौधे की मृत्यु दर 54.7 से 95 प्रतिशत तक बताई गई है। क्षेत्रीय परिस्थितियों में तना सड़न रोग के कारण चने की उपज में 22 से 50 प्रतिशत की कमी होने की सूचना मिली है।

लक्षण : यह रोग शुरूआती अवस्था में, बुवाई के लगभग छह सप्ताह बाद दिखाई देता है। पौधे की पत्तियां पीली पड़ कर सूखने लगती हैं और पौधा खेत में मुरझाकर बिखर जाता हैं अंकुर हरितहीन हो जाते हैं। तने और जड़ का जोड़ नरम होकर थोड़ा सिकुड़ जाता है और वहां से सड़न शुरू हो जाती है। संक्रमित हिस्से भूरे सफेद रंग में बदल जाते हैं। संक्रमित पौधे के हिस्सों पर सरसों जैसी स्क्लेरोटिया (कवक के काले दाने) देखी जा सकती है। पत्तियों का पूरा विच्छेदन, भूरापन, सुखना और अक्सर मृत तने से चिपके रहना भी इस रोग के विशिष्ट लक्षण हैं।

कारण जीव

कालर रॉट या तना सड़न रोग स्क्लेरोटियम रोल्फसी नामक कवक

के कारण के कारण होता है। यह एक गंभीर मृदा जनित रोग है।

नियन्त्रण के तरीके :

- ❖ कैल्शियम उर्वरक का प्रयोग।
- ❖ 3 ग्राम/किग्रा बीज की दर से कवकनाशी का बोंक्सिन से बीज उपचार।
- ❖ गेहूं, ज्वार और बाजरा जैसे अनाजोंके साथ फसल चक्र अनपाएं और बुवाई से पहले खेत से अपघटित अवशेष हटाएं।

5. बोट्रीटिस ग्रेमोल्ड या धूसर फफूंद

कारण जीव

ग्रमोल्ड एक रोगहै जो बोट्रीटिससिनेरिया नामक कवक से होता है।

लक्षण :

इस रोग का पहला और सबसे स्पष्ट संकेत फली बनने में कमी है। यह विशेष रूप से फूलों और फलियों पर हमला करता है, जिससे वे सड़ने लगते हैं और एक भूरे–काले रंग की फफूंद मोल्ड से ढ़क जाते हैं। पौधे की टहनियां मुरझाने लगती हैं और संक्रमण के स्थान पर टूट सकती हैं। यह रोग, पौधों को नमी से पूरी तरह सूखने तक, मुरझाकर भूरा होने और अंत में मरने के कारण बन सकता है। अधिक आर्द्रता में, रोग पत्तियों और तनों पर भूरे या भूरे रंग के धब्बे बना सकता हैं, जो रोएंदार फफूंद कवक के विकास से ढ़के हो सकते हैं। संक्रमित पौधों में फलियों में छोटे, सिकुड़े हुए बीज हो सकते हैं या बीज बिल्कुल ही नहीं बनते हैं। यह रोग उच्च आर्द्रता वाले वातावरण में तेजी से फैलता है और कलियों, फूलों, पत्तियों और फलों को सड़ने का कारण बनता है।

नियंत्रण के उपाय :

- ❖ रोग मुक्त बीज का प्रयोग करें।
- ❖ बीज उपचार तीन प्रतिरोधी किस्में उगाएं जैसे पूसा–1003, के–551, बीजी–276, जीएल–92162, आईपीकेसी–2004–29।
- ❖ देर से बुवाई (नवम्बर का पहला पखवाड़ा) और पंक्तियों के बीच अधिक दूरी रखें।
- ❖ फसल पर कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 1.5 ग्राम/लीटर या मैंन्कोजेब 3 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

प्रमुख कीट :

1. चकुंदर आर्मीवर्म (स्पोडोप्टेराएक्जिगुआ) :

लक्षण : पत्तियों में गोल से लेकर अनियमित आकार के छेद, जो अलग–अलग या समूहों में पाया जा सकते हैं। अत्यधिक भोजन प्राप्त करने वाले युवा लार्वा के कारण पत्तियां कंकालनुमा हो जाती है।

प्रबन्ध : आर्मी वर्म को बैसिल थुरिंजिएंसिस का उपयोग करके जैविक रूप से नियंत्रित किया जा सकता है तथा लार्वा पर परजीवी प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा जैविक नियंत्रित किया जा सकता है, हालांकि वाणिज्य प्रबन्धन के लिए रसायन उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें से कई घरेलू बगीचों में लार्वा के विरूद्ध अप्रभावी हैं।

2. चिकपीली फमाइनर (लिरियोमायजासिसेरिना) :

लक्षण : मादाएं पत्ती की सतह के नीचे अंडे देती हैं और नए निकले लार्वा पत्ती के अंदरूनी ऊतकों को खाकर उसे नुकसान पहुँचाते हैं। इससे पत्ती की सतह पर घुमावदार सफेद धारियां बन जाती हैं। अगर नुकसान ज्यादा हो, तो पूरी पत्ती सूखकर पौधे से गिर सकती है। नन्हें पौधों को नुकसान पहुंचने से पौधा मर सकता है। फसल की पैदावार भी प्रभावित हो सकती है।

प्रबन्ध : छोटे पत्तों वाली चने की किस्में लीफमाइनर्स के लिए कम आकर्षक होती है और इन्हें बसंत के बजाय शुरूआती सर्दियों में लगाना, जब कीटों की संख्या कम हानिकारक स्तर पर होती है, एक सांस्कृतिक नियंत्रण विधि है। सर्दियों में जीवित रहने वाले प्यूपा को मारने के लिए फसल के अवशेषों को भी मिट्टी में गहराई तक जोत देना चाहिए।

3. काला एफिड (एफिसक्रेसिवोरा) :

लक्षण : एफिडस एक चिपचिपा, मीठा पदार्थ स्रावित करते हैं जिसे हनीड्यूक कहते है, जो पौधों पर कालिख जैसी फफूंद के विकास को बढ़ावा देता है। वयस्क की छोटा और मुलायम शरीर वाला होता है और अपने पौधे मर सकते हैं। बीज की वृद्धि और उपज भी कम हो सकती है।

प्रबन्ध : एफिड्स पर सावधानीपूर्वक नजर रखी जानी चाहिए और यदि पाए जाएं तो नियंत्रण उपाय लागू किए जाने चाहिए। चने की कुछ किस्मों में अन्य की तुलना में एफिड संक्रमण की अधिक संभावना होतीहै। इन किस्मों में ट्रोकोम्स (पत्ती केरोम) का घनत्व कम होता है, हालांकि भारत में एफिड्स ने कई कीटनाशकों के प्रतिरोध विकसित कर लिया है। फिर भी रासायनिक उपचार आवश्यक हो सकता है। अन्य सांस्कृतिक नियंत्रण तकनीकों के अलावा, जल्दी रोपण से पौधे की छतरी जल्दी बंद हो जाती है और वायरस का प्रसार धीमा हो जाता है। पौधों के बीच व्यापक अंतराल का उपयोग करने पर एफिड्स का संक्रमण आमतौर पर अधिक गंभीर होता है।

सरसों में एफिड (महू) का प्रकोप एकीकृत प्रबन्धन रणनीतियाँ

योगेश खोखर1 एवं प्रभुलाल कांटवा2

1विद्यावाचस्पति शोधार्थी, केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, दम्फाल, मणिपुर

2भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, भरतपुर, राजस्थान

भूमिका : सरसों भारत की प्रमुख तिलहनी फसलों में से एक है। जो देश की खाद्य तेल आवश्यकता का महत्वपूर्ण भाग पूरा करती है। सरसों की औसत उत्पादकता कई जैविक एवं अजैविक कारकों से प्रभावित होती है। जिनमें कीट–रोगों का विशेष योगदान है। सरसों में लगने वाले कीटों में एफिड या महू सबसे विनाशकारी कीट माना जाता है। यह कीट पौधों से रस चूस कर न केवल उपज में भारी कमी करता है। बल्कि तेल की गुणवत्ता को 20–30 प्रतिशत प्रभावित करता है।

एफिड की पहचान : सामान्य नाम एफिड/महू वैज्ञानिक नाम लिपिफिसएरिसिमी वर्ग कीट वर्ग गण है मिप्टेराकुल एफिडिडी, लक्षण छोटे, मुलायम शरीर वाले कीट रंग हल्का हरा से गहरा पत्तियों, टहनियों, फूलों एवं फलियों पर पाए जाते हैं। झुण्ड में कुछ एफिड पंख युक्त एवं कुछ बिना पंख के होते हें एफिड का जीवन चक्र अधूरा का यांतरण वाला होता है। यह अत्यन्त तीव्र गति से जनसंख्या बढत्राने वाला कीट है। जीवन चक्र की अवस्थाएं निम्फ, वयस्क पंख युक्त एवं बिना पंख के।

विशेषताएं :

- ❖ मादा एफिड बिना अंडा दिए सीधे बच्चों को जन्म देती है।
- ❖ एक मादा 40–80 बच्चों को जन्म दे सकती हैं।
- ❖ जीवन चक्र 7–10 दिनों में पूरा।

एफिड प्रकोप के अनुकूल परिस्थितियाँ :

- ❖ तापमान: 15–20^{o}C
- ❖ शुष्क एवं ठंडा मौसम
- ❖ देर से बोई गई सरसों
- ❖ नाइट्रोजन की अधिक मात्रा
- ❖ खेत में खरपतवारों की उपस्थिति

हानि के लक्षण

- ❖ पत्तियों एवं कोमल लट टहनियों पर एफिड का जमाव।
- ❖ पत्तियों का मुड़ना एवं पीला पड़ना।
- ❖ पौधों की बढ़वार रूकना।

- ❖ फूल एवं फलियों का झड़ना।
- ❖ शहद रस के कारण काली फफूंद का विकास।
- ❖ बीज सिकुड़े हुए एवं हल्के।
- ❖ तेल प्रतिशत में 5–10 प्रतिशत तक कमी।

उपज एवं आर्थिक हानि :

- ❖ सामान्य प्रकोप : 20–30 प्रतिशत उपज हानि।
- ❖ तीव्र प्रकोप : 50–70 प्रतिशत तक नुकसान।
- ❖ देर से बोई फसल में नुकसान अधिक।
- ❖ एकीकृत कीट प्रबन्धन।

नियन्त्रण :

- ❖ समय पर बुवाई (अक्टूबर प्रथम पखाड़ा)।
- ❖ संतुलित उर्वरक प्रयोग।
- ❖ खेत को खरपतवार मुक्त रखना।
- ❖ सहनशील किस्मों का चयन।

जैविक नियन्त्रण : प्राकृतिक शत्रु जैसे लेडी बर्ड बीटल, ग्रीनलेसविंग, सिरफिड मक्खी, जैव कीटनाशी नीम तेल 3–5 मि.ली./लीटर, नीम बीज अर्क (NSKE) 5 प्रतिशत।

यांत्रिक नियन्त्रण :

- ❖ प्रारम्भिक अवस्था में संक्रमित टहनियाँ काट कर नष्ट करना।
- ❖ पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग।

रासायनिक नियन्त्रण :

कीटनाशी	मात्रा
इमिडाक्लोप्रिड 17.8 SL	0.3 मि.ली/लीटर
थायमेथोक्साम 25 WG	0.25 ग्राम/लीटर
एसिटामिप्रिड 20 SP	0.2 ग्राम/लीटर
डाइमेथोऐट 30 EC	1.0 मि.ली./लीटर

मधुमक्खियों की सुरक्षा हेतु छिड़काव सुबह या शाम करें। जलवायु परिवर्तन एवं एफिड बढ़ता तापमान अनियमित सर्दी और कम वर्षा एफिड के प्रकोप को ओर गंभीर बना रही है। भविष्य में एफिड प्रबन्धन के लिए जैविक एवं पर्यावरण–अनुकूल रणनीतियों आवश्यक है।

निष्कर्ष :

सरसों एफिड एक अत्यन्त विनाशकारी कीट है। जो अल्प समय में भारी आर्थिक क्षति पहुँचा सकता है। इसके प्रभावी नियन्त्रण हेतु समय पर निगरानी, जीवन चक्र की समझ और एकीकृत कीट प्रबन्धन अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। इससे न केवल उपज बढ़ेगी बल्कि पर्यावरण संतुलन भी बनाए रहेगा।

डॉ. आर. एन. शर्मा
प्रसार शिक्षा निदेशक

निदेशक की कलम से

फरवरी माह में कृषि कार्य

प्रिय किसान भाईयों,

1. गेहूँ की फसल में गांठ बनते समय तथा बालियाँ आने के समय (बुवाई के 70 दिन बाद) व जौ में दूधिया अवस्था पर सिंचाई करें।
2. गेहूँ व जौ की खड़ी फसल में दीमक नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 400 मि. ली. या फिप्रोनिल 5 एस.सी. 1 लीटर प्रति हैक्टेयर सिंचाई के साथ देवें
3. लहसुन एवं प्याज की फसल में पर्णजीवी (थ्रीप्स) के नियंत्रण हेतु थाईमेथाक्सॉम 25 प्रतिशत ई.सी. का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। बैंगन में चकता रोग व तुलासिता रोग के नियंत्रण के लिए फसल पर मेंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।
4. जायद मूंग की बुवाई के लिये आई.पी.एम. 02–03, पूसा बैशाखी व आर.एम.जी.–492 किस्में बोयें।
5. जीरा, मटर, सौंफ, मेथी एवं धनियां की फसल में छाछ्या रोग का प्रकोप दिखाई देने पर 25 किलो गंधक के चूर्ण का प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें या डाइनोकेप का 1.0 मिली. प्रति लीटर या हेक्जाकोनाजोल 10 प्रतिशत ई.सी. 0.5 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
6. ग्रीष्मकालीन मिर्च एवं टमाटर की नर्सरी तैयार करें। बुवाई पूर्व बीजों को केप्टान 2 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें एवं नर्सरी में 8 से 10 ग्राम कार्बोफ्यूरोन 3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से मिलावें।
7. प्याज की रोपाई के 30–45 दिन बाद फसल में 50 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर देवें एवं सिंचाई करें।
8. नींबू में केन्कर रोग की रोकथाम के लिये बोर्डो मिश्रण (4:4:50) या स्ट्रेप्टासाइक्लीन 300–400 मिली दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। पपीते में तना गलन की रोकथाम हेतु उचित जल निकास की व्यवस्था करें। केप्टान या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर जड़ों में डालें।
9. नवजात बछड़े–बछड़ियों को अन्तः परजीवीनाशक दवाई, पशु चिकित्सक की सलाहनुसार दें। दुधारू पशुओं को थनैला रोग से बचाने के लिये दूध पूरा व मुठ्ठी बांध (फुल मिल्कींग) कर निकालें। पशुशाला की प्रतिदिन सफाई करें।

प्रमुख संरक्षक : प्रो. पुष्पेन्द्र सिंह चौहान
संरक्षक : डॉ. आर.एन. शर्मा
प्रधान सम्पादक : डॉ. आर.ए. शर्मा
डॉ. सन्तोष देवी सामोता
डॉ. बी. एल. आसीवाल
तकनीकी परामर्श : डॉ. एल. आर. यादव
डॉ. आर. पी. घासोलिया
डॉ. ओ. पी. गढ़वाल
डॉ. एस. एल. शर्मा

बुक पोस्ट

डाक टिकट

पत्रिका सम्बन्धी आप अपने सुझाव, आलेख एवं अन्य कृषि सम्बन्धी नवीनतम जानकारियाँ हमारे मेल jobnerkrishi@sknau.ac.in पर भेजे।

प्रकाशक एवं मुद्रक : निदेशालय, प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के लिए अम्बा प्रिन्टर्स, जोबनेर से मुद्रित।